



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2015; 1(3): 65-66

© 2015 IJSR

www.sanskritjournal.com

Received: 25-01-2015

Accepted: 27-02-2015

डॉ. अनीता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भर्तृहरि के अनुसार सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाएं

डॉ. अनीता शर्मा

प्रस्तावना

वैयाकरणों ने क्रिया को 'फल' एवं 'व्यापार' दोनों का वाचक माना है।¹ अतः एक धातु फलांश व व्यापारांश में विभक्त मानी जा सकती है। उदाहरणार्थ 'पच्' धातु में अग्नि प्रज्वलन, अधिश्रयण, आलोडन, अधःश्रयणादि, व्यापारादि अंश कहे जाएंगे एवं विक्लित्ति को पच् का फलांश कहेंगे। 'फल' को कर्माश्रय एवं व्यापार को 'कर्त्राश्रय' माना जाता है।² इसी पर सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाएं आधारित हैं।

'फल' एवं 'व्यापार' के आधार पर कौण्डभट्ट ने 'सकर्मक' एवं 'अकर्मक' क्रियाओं का लक्षण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार जहां फल एवं व्यापार एक ही स्थान में स्थित हों, वे अकर्मक एवं जहां 'फल' तथा 'व्यापार' अलग-अलग स्थानों में स्थित हो, वे 'सकर्मक' क्रियाएं कहलाती हैं।³ नागेश ने भी फल एवं व्यापार के आधार पर सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाओं के स्वरूप को स्पष्ट किया है।⁴

भर्तृहरि ने अकर्मक के विषय में कहा है कि स्वयं को स्वयं के द्वारा धारण करने पर 'अस्ति' इस प्रकार का व्यपदेश किया जाता है। आत्मधारण अर्थात् अपने में धारण करना 'अस्ति' क्रिया का फल है एवं तदनुकूल व्यापार है। 'आत्मधारण' रूप 'फल' तदनुकूल व्यापार

रूपी कर्ता में समानभाव से रहते हैं। इसलिए 'अस्' धातु अकर्मक है।⁵

पदवाक्यप्रमाणज्ञ भर्तृहरि ने कुछ परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिसमें सकर्मक का अकर्मक में परिवर्तन हो जाता है।

ये चार परिस्थितियां हैं—

(क) धातोरर्थान्तरे वृत्ते:

(ख) धात्वर्थनोपसंग्रहात्

(ग) प्रसिद्धे:

(घ) अविषकातः।

अर्थात् जब धातु दूसरे अर्थ को धारण कर ले, जब कर्म धातु के अर्थ से उपसंग्रह को धारण कर ले, जब प्रसिद्धि कारण हो एवं जहां कर्म की विवक्षा न हो, वहां सकर्मक होते हुए भी धातु अकर्मक के रूप में व्यवहृत की जाती है।⁶

धातोरर्थान्तरे वृत्ते:

सकर्मक क्रियाएं धातु के दूसरे अर्थ को धारण करने की स्थिति में अकर्मक हो जाती हैं। जैसे वहति भारम् में 'वह' धातु फल एवं व्यापार के आश्रय भिन्न-भिन्न होने से सकर्मक है। यहां भार को वहन करने वाला व्यक्ति एवं उसका फल प्राप्त करने वाला व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। किन्तु 'वह' धातु अपने मुख्यार्थ 'उठाना' को त्यागकर कुछ और अर्थ धारण कर ले तो अकर्मक कहलाएगी, जैसे—'वहन्ति नद्यः' में 'उठाना' अर्थ की प्रतीति न होकर, नदी में हो रहे 'स्पन्दन' का बोध हो रहा है। इस स्थिति में 'वह' धातु 'स्पन्दन' अर्थ में सकर्मक न होकर अकर्मक होगी।

धात्वर्थनोपसंग्रहात्

कर्म के धात्वर्थ में संगृहीत हो जाने पर सकर्मक धातु अकर्मक में परिवर्तित हो जाती है। जीव धातु प्राणों को धारण करने के अर्थ में (जीव प्राणधारणे) प्रयुक्त होती है। 'प्राण' कर्म होते हुए भी धातु के अर्थ में संगृहीत है। अतः 'जीव' धातु अकर्मक होगी। इसी प्रकार के नृती गात्रविक्षेपे में गात्रविक्षेप होकर भी धात्वर्थ से उपसंगृहीत है।

Correspondence

डॉ. अनीता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

अतः 'नृत्' धातु अकर्मक मानी गयी है। प्रसिद्धे: कुछ धातुएं प्रसिद्धि के कारण सकर्मक से अकर्मक में बदल जाती है। जैसे 'मेघो वर्षति'। यहां व्यापार एवं फल का आश्रय अलग-अलग है। फल का भोक्ता 'मेघ' स्वयं नहीं होता, अतः यहां सकर्मकत्व सिद्ध है किन्तु 'जल' रूप कर्म को प्रसिद्धि के आधार पर त्याग कर 'बरसना' ही धातु का अर्थ माना जाता है। इसी कारण वृष् धातु अकर्मक कही जाती है।

अविवक्षातः

जब वक्ता कर्म को कहने की इच्छा न करे तो भी सकर्मक धातु में अकर्मक बदल जाती है। जैसे 'हिताद् न यः संश्रुणुते स किंप्रभुः' 7 'हितकारी वचनों को जो नहीं सुनता, वह कैसा स्वामी' में वक्ता की कर्म के प्रति विवक्षा दृष्टिगोचर न होने के कारण श्रु धातु का अकर्मकत्व व्यवहार हुआ है।

उपसर्गवशात् भी सकर्मक धातु अकर्मक में परिवर्तित हो जाती है। उदाहरणार्थ 'चर्' (जाना) धातु सकर्मक है परन्तु 'उत्' उपसर्ग लगने से 'चर्' धातु 'वाष्पमुच्चरति' (भाप उठती है) 'धूम्रम् उच्चरति' (धुआँ उठता है) प्रयोगों में अकर्मक है।

इसके विपरीत कितने ही धातु जो अकर्मक है, उपसर्ग लगने से सकर्मक हो जाते हैं। जैसे 'भू' धातु अकर्मक है परन्तु अनु + भू (अनुभव करना) जैसे 'सुखम् अनुभवति' (सुख का अनुभव करता है) सकर्मक हो जाती है।⁸

वैयाकरणभूषणसार में 13वीं कारिका की व्याख्या करते हुए वाक्यपदीय के साधन समुद्देश की 88वीं कारिका उद्धृत की गई है। कौण्डभट्ट भर्तृहरि से सकर्मक-अकर्मक क्रियाओं के विषय में मतैक्य प्रकट करते हैं। साथ ही साथ इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए 'ज्ञा'

धातु के सकर्मकत्व का वर्णन करते हैं। भर्तृहरि के मत का समर्थन करते हुए ही वे 'ज्ञा' की सकर्मकता का वर्णन करते हैं।

'देवदत्तः आत्मानं जानाति' कहें तो 'ज्ञा' धातु अकर्मक मानी जाएगी क्योंकि 'ज्ञा' धातु का फल एवं व्यापार देवदत्त में ही निष्ठ है। तो क्या 'ज्ञा' धातु अकर्मक है? यदि अकर्मक है तो 'आत्मानम्' में द्वितीया (कर्म) का प्रयोग कैसे हुआ?

इस विषय में महाभाष्यकारोक्त 'आत्मा' के दो प्रकारों को स्पष्ट करना आवश्यक है। पतंजलि ने 'शरीरात्मा' एवं 'अन्तरात्मा' का वर्णन किया। 9 वास्तविक रूप से आत्मा 'एक' ही है किन्तु उपाधिभेद से उसे एकाधिक माना गया है। शरीरात्मा कर्म एवं अन्तरात्मा कर्ता से सम्बद्ध है।

शरीरात्मा एवं अन्तरात्मा के आधार पर 'देवदत्तः आत्मानं जानाति' में सकर्मकत्व को सिद्ध किया गया है। ज्ञा धातु का फलांश (ज्ञान) शरीरात्मा से एवं तदनुकूल क्रिया रूप व्यापारांश अन्तरात्मा से सम्बद्ध मानने पर 'ज्ञा' में सामानाधिकरण्य नहीं रहेगा। ज्ञा धातु के अकर्मकत्व का प्रश्न फल एवं व्यापार के सामानाधिकरण्य (देवदत्त) के आधार पर उठाया गया था। जब 'ज्ञा' धातु के फल एवं व्यापार का अधिकरण भिन्न-भिन्न सिद्ध हो जाता है तो स्वतः ही 'ज्ञा' का सकर्मकत्व भी सिद्ध हो जाता है। भर्तृहरि ने भी कहा है कि बुद्धि की अवस्थाओं के कारण भेद की कल्पना कर कर्म, करण एवं कर्तृत्व कहा जाता है।¹⁰

इस प्रकार भर्तृहरि ने स्पष्ट लक्षण देकर सकर्मक एवं अकर्मक के स्वरूप को स्पष्ट किया एवं उन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है, जिन में सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाएं अपने स्वरूप को छोड़कर तद्विपरीत रूप को धारण कर लेती है। भर्तृहरि के 'सकर्मक एवं अकर्मक स्वरूप - वर्णन के आधार श्लोक सिद्धान्त कौमुदी' में सकर्मक-अकर्मक का लक्षण दिया गया है।¹¹

सन्दर्भ सूची

1. फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिड : स्मृताः। फले प्रधानं व्यापारस्तिङ्गर्थस्तु विशेषणम्।।
दृ वैयाकरणभूषणसार, 2
2. (अ) आत्मानमात्मना बिभ्रस्तीति व्यपदिश्यते। अन्तर्भावाच्च तेनासौ कर्मणा न सकर्मकः।। वाक्यपदीय 3.3.47
(आ) फलाश्रयः कर्म। व्यापाराश्रयः कर्ता। वैयाकरणभूषणसार 2 कारिका की व्याख्या
3. फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः।
धातुस्तयोर्थमिभेदे एकर्मक उदाहृतः।। वैयाकरणभूषणसार, कारिका 13
4. फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वम्,
फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्।
वस्तुतस्तु शब्दशास्त्रीयकर्मसंज्ञार्थान्वयर्थकत्वं सकर्मकत्वम्।
तदनन्वयर्थकत्वमकर्मकत्वम्। -परमलघुमञ्जूषा पृष्ठ 69, 100
5. (अ) तेन स्वधारणानुकूलो व्यापारो वाऽपि गम्यत इति भावः।
तेन कर्मणा सकर्मकत्वं तु न, अन्तर्भावात् फलांशेन सामानाधिकरण्यसावादित्यर्थः। वैयाकरणभूषणसार, कारिका 2
(आ) सोत्पत्यनुकूलव्यापारभाजामिति सूक्ष्मरूपापन्न- घटादीनां परसमवेतत्वघटितकर्मताविरहात्। शब्दकौस्तुभ पा. 1.3.1 पर.
6. धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया।। वाक्यपदीय 3.7.88
7. किरातार्जुनीय 1.5
8. (अ) 'अकर्मका अपि धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति'।
महाभाष्य - पा. 1.1.43 पर
(आ) द्विवेदी, कपिल देव, अर्थ विज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृ 274
9. द्वावात्मानौ - शरीरात्मा, अन्तरात्मा च। अन्तरात्मा सत्कर्म करोति येन शरीरात्मा सुखदुःखे अनुभवति, शरीरात्मा तत्कर्म करोति
येनान्तरात्मा सुखदुःखे अनुभवति। महाभाष्य पा. 3.1.87 पर
10. (अ) 'आत्मानं जानाति, इच्छति इत्यादौ...
भिन्नाधिकरणनिष्ठतामादाय सकर्मकत्वम् इत्यवधेयम्।
दृ वैयाकरणभूषणसार (13वीं कारिका की व्याख्या)
(आ) एकस्य बुद्ध्यवस्थाभिर्भेदे च परिकल्पिते। कर्मत्वं करणत्वं च कर्तृत्वं नोपजायते।। वाक्यपदीय 3.7.104
11. क्रियापदं कर्मपदेन युक्तं साकांक्षता चैव जहाति यत्र। सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मको हि।
दृ श्लोक सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 3
12. काशिका, आर्येन्द्र शर्मा, संस्कृत परिषद् ग्रन्थावली-17,
हैदराबाद, 1969.
महाभाष्य, श्रीकाशी संस्कृत ग्रन्थमाला-153, वाराणसी 1984
13. परमलघुमञ्जूषा, कालिकाप्रसाद शुक्ल, बड़ौदा, 1961.
14. वाक्यपदीय, अभ्यंकर एवं लिमये, पूना, 1965.
15. वाक्यपदीय प्रकाश व अम्बाकत्री टीका सहित, रघुनाथ शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1979.
16. वैयाकरणभूषणसार, प्रभाकर मिश्र, वाराणसी, 1982.
17. संस्कृत व्याकरण दर्शन, रामसुरेश त्रिपाठी, दिल्ली, 1972.
18. व्याकरण की दार्शनिक भूमिका, सत्यका वर्मा, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1971.